कर्मफल अपरिहार्य है

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

कर्मफल क्या है? यह प्रश्न विचारणीय है। जहां समस्या है वहां समाधान भी है। जहां कारण है वहां कार्य भी है। जो धर्म, जो संस्कृति आत्मा में विश्वास करती है वह कर्म में भी विश्वास करती है। आत्मा कर्मों से बद्ध होकर संसार में भटक रहा है। भारतीय संस्कृति में जीवन को चार भागों में बांटा गया है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। पाश्चात्य संस्कृति अर्थ और काम को महत्व देती है। भारतीय संस्कृति इसके आगे धर्म और मोक्ष तक जीवन की व्याख्या करती है। जो लोग ईश्वर और आत्मा में विश्वास करते हैं उनके अनुसार जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। कर्म को नष्ट करने वाला आत्मा अपने स्वरूप में स्थित होता है तो वह अवस्था मोक्ष की होती है। बीज जैसा रहता है उसका फल भी वैसा ही होता है। मानव जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। यह शरीर भौतिक तत्वों से बना हुआ है। इसके अन्दर शुद्ध आत्मा भगवान् विराजमान् है। शरीर कर्मफल के अनुसार मिलता है। जो जैसा कर्म करता है उसको वैसी योनि प्राप्त होती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो वह उच्च कुल और गौत्र का बन्ध करता है और यदि बुरा कर्म करता है तो उसे कूकर सूकर योनि की प्राप्ति होती है। कर्मफल के सिद्धान्त के अनुसार कर्म को भुगते बिना जीव को छुटकारा नहीं मिलता। सभी को अपने किये हुए का फल अवश्य मिलता है। इस संसार में कोई सुख भोगता है तो कोई दुःख। इसका कारण यह है कि जिसने पूर्वजन्म में अच्छे कार्य किये थे उसी का फल पुण्य के रूप में प्राप्त हो रहा है और वह सुख भोग रहा है। भावों के अनुसार कर्म का बन्धन होता है।

कर्म मुख्यतः दो प्रकार के है– घाती कर्म और अघाती कर्म। घाती कर्म आत्मा के स्वभावगत गुणों को नुकसान पहुंचाता है और अघाती कर्म वे कर्म हैं जो आत्मा के स्वाभाविक गुणों को नष्ट नहीं करते किन्तु बंधन के कारण होते हैं। चाहे लोह की श्रृंखला हो या स्वर्ण की दोनों

से बंधन होता है। अतः जब तक काम, क्रोध, मद, लोभ जैसे कषाय आत्मा के साथ रहेंगे बंधन होगा ही क्योंकि इससे आत्मा में कर्त्ताभाव जागृत हो जाता है। बंधन का कारण कर्त्ताभाव है। मैं और मेरा अहंकार का कर्त्ताभाव है। दार्शनिक दृष्टि से यदि हम चिंतन करें तो बंधन और मुक्ति जीव के लिए है। कर्मों का बंधना बन्धन है। जो बंधे या जिसके द्वारा बांधा जाये या बन्धन मात्र को बन्ध कहते हैं। कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बन्ध हैं। कर्म प्रदेशों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना, बन्ध है। मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आए हुए कर्म पुद्गलों का आत्मप्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। जैसे बेड़ी आदि से बंधा हुआ प्राणी परतन्त्र हो जाता है और इच्छानुसार देशादि में नहीं आ–जा सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा परतन्त्र होकर अपना इष्ट विकास नहीं कर पाता। अनेक प्रकार के शरीर और मानस दुःखों से दुःखी होता है। राग–द्वेषादि के निमित्त से जीव के साथ पौद्गलिक कर्मों का बन्ध निरन्तर होता है। जीव के भावों की विचित्रता के अनुसार वे कर्म भी विभिन्न प्रकार की फलदान शक्ति को लेकर आते हैं, इसी से वे विभिन्न स्वभाव या प्रकृति वाले होते हैं। प्रकृति का अर्थ स्वभाव है। जिस प्रकार नीम की क्या प्रकृति है? कडुआपन। गुड़ की क्या प्रकृति है? मीठापन। उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म की क्या प्रकृति है? अर्थ का ज्ञान न होना इत्यादि। जीव के प्रदेशों की उथल–पुथल को अस्थिति तथा उथल–पुथल न होने को स्थिति कहते हैं। जिसका जो स्वभाव है, उससे च्युत न होना स्थिति है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का माधुर्य स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का अर्थ का ज्ञान न होने देना आदि स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है। विविध प्रकार के पाक अर्थात् फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है। शुभाशुभ कर्म की निर्जरा के समय सुख–दुःख रूप फल देने की शक्ति वाला अनुभाग बन्ध है। कर्म रूप से परिणत पुद्गल स्कन्धों का परमाणुओं की जानकारी करके निश्चय करना प्रदेशबन्ध है। दो के बिना बन्ध नहीं होता। एक हाथ से ताली नहीं बज सकती, उसी प्रकार बन्ध तत्त्व भी एक के बीच में नहीं हो सकता। सांसारिक जो विषय–सामग्री है वह, और उसका जो भोक्ता है आत्मा ये दोनों संयोग होते ही बन्ध हो जाते हैं।

कर्म पुद्गलों के ग्रहण को बन्ध कहा जाता है। जीव के द्वारा कर्म पुद्गलों के ग्रहण का क्षीर–नीर की भांति परस्पर आश्लेष होता है, उसे बन्ध कहा जाता है। वह प्रवाहरूप से अनादि और जो भिन्न–भिन्न कर्म बंधते रहते हैं, उनकी अपेक्षा सादि है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति, ये सब कर्मों के आने के द्वार होने से आस्रव हैं। इनसे विपरीत सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, मोह व कषायहीन शुद्धात्म परिणति तथा मन, वचन, काय के व्यापार की निवृत्ति ये सब नवीन कर्मों के निरोध के हेतु होने से संवर हैं। आस्रव का निरोध करना ही संवर है। जिनसे कर्म रुकें, कर्मों का रुकना संवर है। कर्मरज आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है। चतुःस्पर्शी पुद्गल से आत्माबद्ध होता है। आत्मा का विशिष्ट गुण है चैतन्य। आत्मा प्रकाशमान है। भगवान् बुद्ध, भगवान महावीर मोक्ष गामी हुये, क्योंकि उनको यह ज्ञान था कि शरीर और आत्मा पृथक–पृथक तत्व है। कार्मण शरीर के कारण जीव सुखों में डूब जाता है। सत् असत् प्रवृत्ति के कारण कर्म आत्मा की तरफ आकृष्ट होकर आत्मा से चिपक जाता है। जिसके कारण आत्मा कर्मों से बद्ध हो जाता है।